Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.06, June,2025

मध्यकालीन भारत कर व्यवस्था का एक आलोचनात्मक विश्लेषण

साधना कुशवाहा*
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज अलीपुर
दिल्ली विश्वविद्यालय।

****

Abstract: ***मध्यकालीन आर्थिक इतिहास का उल्लेख अभिलेखों, सिक्कों, स्मारकों, धार्मिक साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर इतिहासकारों ने प्रमाणिक आर्थिक इतिहास का उल्लेख किया है। प्राचीन काल खंड में मध्यकाल की अपेक्षा अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों का रचनात्मक उल्लेख उदय हुआ। विदेशी मुस्लिम शासकों के संपर्क में आने के कारण भारतीय समुदाय में एक दृष्टिकोण दार्शनिक रूप से विकसित हुआ। जिसने व्यक्ति का ध्यान इस कालखंड में आध्यात्मिकता के साथ-साथ भौतिक जगत की ओर स्थापित किया। इसी कारण धार्मिक, दार्शनिक ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक प्रमाणिक ग्रंथों का उल्लेख सल्तनत और मुगल काल की फारसी और अरबी ग्रंथों में मिलता है। इन ग्रंथों के अधिकांश रचनाकार विदेशी तुर्की और अफगानी शासक थे। यह लेखक भारत में इस्लाम की प्रगति और राजनीतिक मामलों के साथ-साथ आर्थिक मामलों में इस्लामिक राजनीतिक व्यवस्था में रुचि रखते थे। प्रस्तुत शोध पत्र में, इनका ग्रंथि करण निष्पक्ष नहीं था और न ही वैज्ञानिक तार्किकता के आधार पर लिखा गया, किंतु साक्षा की उपलब्धता के लिए एकमात्र विकल्प होने के कारण मध्यकालीन कालखंड की ऐतिहासिक जानकारी के लिए इनका उपयोग किया जाना, आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यंत लाभकारी होगा एवम् तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीय समाज की सामाजिक राजनीतिक आर्थिक सांस्कृ तिक वांचना और शोषण को आधार बनाया जाता गया है। साथ ही इतिहास को श्रृंखलाबद्ध करने के लिए उक्त शोध साहित्य के अनुरूप वर्तमान में उपलब्ध संसाधनों और पुस्तकालय पुस्तकालय पर उपस्थित साहित्यिक विवेचना अत्यंत महत्वपूर्ण ळें***

Keywords: ***मध्यकालीन, भारत, आर्थिक इतिहास, आलोचनात्मक विश्लेषण***

****

भारतीय उपमहाद्वीप में मानवीय विकास की संभावनाएं पृथ्वी पर विकसित हो रही, सभी शुरुआती सभ्यताओं में विकसित स्वरूप दिखाई पड़ता है। क्योंकि शुरुआती दौर में जहां मानव ने अपने खाद्य सुरक्षा और अन्य जीव-जंतुओं से स्वयं को सुरक्षित करने का परिवेश तैयार किया। वहीं उसने समय परिवर्तन के साथ मानवीय सभ्यता को एक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्वरूप देने के लिए स्थाई बस्तियों और स्थाई मानवीय सभ्यता की व्यवस्था का अनावरण किया। जिसमें उसने पत्थरों और आसपास के जंगलों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए। मानवीय विकास की रूपरेखा तैयार की। इस मानव विकास में आमूलचूल परिवर्तन आग के अविष्कार से पैदा हुआ, जिसने न केवल मानव के जीवन के रहने के तौर तरीके को बदला हुआ, बल्कि मानवीय जीवन की गति को आर्थिक सामाजिक दृष्टिकोण से बदला। क्योंकि इस आग के अविष्कार से न केवल मानव ने अपने खाद्य सुरक्षा की गुणवत्ता में सुधार की एवम् जीव जंतु और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में आमूलचूल बदलाव हुए। जिससे मानव ने तेजधार के हथियार बनाकर कृषि के व्यवसाय को एक नई दिशा दी और उत्पादन की प्रवृत्ति में नई चेतना विकसित हुई।

मध्यकाल की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था-

उत्तर भारत में बाहर में 12वीं शताब्दी के बाद तुर्कों ने भारतीय शासन व्यवस्था को अपने अनुरूप विकसित किया। प्रारंभ में भारी खून खराब, लूट और नरसंहार का कालखंड रहा। जिसमें बड़े-बड़े स्थापित स्थाई नगरों को उजाड़ दिया गया। बहुत वैभवशाली मंदिरों को तोड़ दिया गया, जिससे परंपरागत रूप से चली आ रही भारतीय सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था ध्वस्त हो गई और भारत में एक नई राजनीतिक एवं राज्य की नींव रखी गई। भारतीय राजपूती राज्यों के विपरीत इस नए साम्राज्य में केंद्रीकरण कर की प्रवृत्ति अधिक शक्तिशाली थी। जिसमें परंपरागत रूप से सरदारों और जमीदारों के संरक्षण वाले क्षेत्रों में जहां वह मालगुजारी करते थे। वहां का अधिकांश भाग अपने स्थानीय स्वशासन और अपनी सैन्य संरक्षण की संरचना पर खर्च करते थे, किंतु यह सब सुल्तान की इच्छा पर काफी हद तक आश्रित हो गया और वह अपनी इच्छा के अनुरूप आर्थिक सामाजिक स्थानांतरण को निर्धारित करने लगा।

साथ ही सल्तनत काल में सैन्य शासन को संगठित कर एक बड़ी फौज तैयार की गई जो कि किसानों से करगी वसूल करने में एक प्रशासनिक भूमिका अदा कर सकें। इन्हीं सैनिक और सैन्य संरक्षण के आधार पर सुल्तानों ने दक्षिण के दूर क्षेत्र मदुरै तक अपना साम्राज्य स्थापित किया तथा दक्षिण और गुजरात के समृद्ध इलाकों को लूट कर संचित खजानो को कब्जे में लेकर अपने संसाधनों की आपूर्ति और अपने शासन को मजबूत बनाया। 15 वीं शताब्दी के आरंभ में दिल्ली सल्तनत का विघटन होगा और देश में विभिन्न विभागों के स्वतंत्र राज्यों का निर्माण हुआ, लेकिन अधिकतर राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था सल्तनत काल की प्रशासनिक व्यवस्था से प्रभावित रही यहां तक की 16वीं शताब्दी में विकसित हुई मुगल प्रशासन व्यवस्था को भी सल्तनत कालीन प्रशासनिक व्यवस्था से प्रभावित बना बनाया गया।

केंद्रीकृत सत्ता

सल्तनत काल में सुल्तान भारत के बहुत से तुर्की सुल्तानों ने स्वयं को बगदाद के अब्बास खलीफा का वफादार प्रतिनिधि घोषित किया। उसकी सर्वाेच्च स्थिति का ऐलान करके दिल्ली के सुल्तान इस्लामिक दुनिया से स्वयं को जोड़कर मुस्लिम जनता को संतुष्ट करना, धर्म शास्त्रियों के शक्तिशाली वर्ग के प्रभाव को दिखाते हैं। जिससे गजाली जैसे दार्शनिक सुल्तान के अस्तित्व को सामाजिक संरचना के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हैं। क्योंकि राज्य के संचालन के लिए यदि कोई शासक नहीं है, तो सारी व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न बिखर जाएंगे। वही भारत और फारस में हिंदू देवी देवताओं के प्रचलन को इस्लाम ने अस्वीकार किया। जिसके कारण शुरुआती दौर पर राजनीतिक आधारों पर सल्तनत काल स्थानीय जन समुदाय से समन्वय स्थापित नहीं कर पाया, सुल्तान की सहायता के लिए अनेक मंत्रियों का एक समूह कार्यरत रहता था। जिसमें मंत्रियों की संख्या शक्ति और अधिकारों को समय-समय पर उल्लेखित एवं व्याख्यात्मक ढंग से परिवर्तित किया जाता था। 13वीं शताब्दी के अंतिम भाग में प्रशासन की एक स्पष्ट व्यवस्था विकसित हुई, जिसमें केंद्रीय स्थान वजीर को निश्चित किया गया। शुरु में वजीर सेना प्रमुख के रूप में कार्यरत था किंतु चैधरी शताब्दी में वजीर को राजस्व के मामले का विशेषज्ञ बनाया गया, जो कि उस समय का बड़ा विभाग था। जिसमें संपूर्ण राज्य की आर्थिक गतिविधियों से संबंधित आए और वह दोनों को निर्धारित किया गया था। राजस्व विभाग के गठन पर मोहम्मद बिन तुगलक अत्यधिक बल दिया, वजीर के पद और राजस्व की स्थिति में सल्तनत काल का ऐसा गठजोड़ पैदा हुआ। जिसके फलस्वरुप एक समय पर वजीर सल्तनत काल में किंग मेकर की भूमिका में आ गया। वजीर के बाद राज्य का सबसे महत्वपूर्ण पद देने आज अर्थात सैनिक विभाग था। जिसका प्रमुख ए मुंमालिक कहलाता था। सैन्य संगठन और राजस्व प्राप्ति के संदर्भ में अलाउद्दीन खिलजी का भी शासन काल सल्तनत काल खंडों में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। जिसमें उसने घोड़ों को दागने की व्यवस्था और सैनिकों को नगद राशि के रूप में वेतन का प्रशासनिक कदम उठाया। कर व्यवस्था/आर्थिक गतिविधि का मूल्यांकन मध्यकाल में हस्तशिल्प और अन्य आर्थिक गतिविधियों में संलग्न कुशल कारीगर मध्यकालीन कालखंड में कृषि क्षेत्र का मूल्यांकन आर्थिक दृष्टिकोण से भारतीय उपमहाद्वीप कृषि क्षेत्र रहा है यहां की कृषि की उपज प्रकृति के द्वारा उपलब्ध संसाधनों का मुख्य केंद्र रही है। जिसमें मानवीय जीवन के उपयोग में लाई जाने वाली सभी आवश्यक संसाधनों का उपयोग की उपलब्धता निश्चित हुई, जिसके कारण रजवाड़ों विद्रोही विदेशी आक्रमण पर कार्यों ने अलग-अलग काल खंडों में कृषि प्रधान क्षेत्र को अपने अधीन लेने का प्रयास किया। ऐतिहासिक लेखों के आधार पर कृषि के राजस्व को लगान के रूप में जनता के द्वारा राजनीतिक सत्ता तक पहुंचाया जाता था। जिसमें संपूर्ण पर शोषण सुचारू रूप से संलग्न था, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मौर्य राजाओं की काल में कृषि एवं कृषि उत्पादन को बढ़ावा देने हेतु कृषि अधिकारियों की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने मुख्य नाले और उनकी शाखाओं का वर्णन करते हुए।

मध्यकालीन भारत में कृषि वृद्धि और विस्तार को साहित्यिक आलेखों के आधार पर प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। जिसमें जनजाति, वन्य निर्जन बंजर, तटीय और सीमावर्ती इलाकों में अनुदान के द्वारा भूमि स्वामित्व का होना, एक नए आर्थिक दृष्टिकोण के रूप में विकसित हुआ, क्षेत्र के चरणबद्ध विकास का समावेश कृषि के होने का प्रमुख कारण रहा। दक्षिण में आदर से शुल्क, शुष्क क्षेत्रों की परी क्षेत्र सीमा तक कावेरी डेल्टा में तथा ताम्र परिणी के ऊपरी क्षेत्र में कृषि विस्तार का क्रमिक प्रसार दिखाई देता है। जिसमें संसाधनों की बढ़ती आपूर्ति को तमिलनाडु, उड़ीसा, असम, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, बंगाल, कर्नाटक, राजस्थान के राजाओं और राजकुमारों, मुखिया और सरकारी अधिकारियों ने कृषि संरक्षण और सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए प्रयास किया। साथ ही केरल जैसे क्षेत्रों में मंदिरों की भूमिका कृषि निगमों के रूप में दिखाई पड़ती है। जिसमें गैर सरकारी व्यक्तिगत और सामूहिक

प्रयासों के द्वारा सिंचाई व्यवस्था का आरंभ एवं सरकारी प्रयासों से राजस्व की निगरानी आदि के साथ-साथ जन कल्याण के लिए ऐसे लाभकारी कार्य सामूहिक रूप में उन्नत सामाजिक परिवेश में प्रतीत होते हैं एवं राजा और भू स्वामियों के द्वारा लाभार्थियों ने कृषि पर दिए जाने वाले ध्यान का विस्तृत वर्णन जोत भूमि फसल और सिंचाई सुविधाओं में बेहतरी के का उल्लेख अभिलेख और साहित्य में मिलता है।

उत्तर प्रदेश में प्राचीन आर्थिक गतिविधियों का उद्घाटन घाटी यंत्र राजस्थान, कर्नाटक, तमिलनाडु, दक्कन में तालाब और नहर, बंगाल और केरल में नदियां छोटी नदियां नाले, पोखर, कुआं आदि की पहुंच का उल्लेख सिंचाई योग सुविधाओं के रूप में किया गया है। जो कि उपमहाद्वीप की परिस्थिति के लिए उपयुक्त सिद्ध हुई जिससे यह चित्र सिंचाई की दृष्टि से न केवल प्राथमिक रहा, बल्कि प्राथमिक आधारों पर चोल संस्कृति के पुरा लेखों को पढ़ने के बाद स्थानीय स्तर पर विविधताओं को वहां की भौगोलिक विशेषता के आधार पर व्यक्त करने के उल्लेख मिलते हैं। क्योंकि तालाब नहरों से सिंचाई के उपयोग की तुलना में पानी की सीमित उपलब्धता अनेक प्राथमिक मध्यकालीन शासकों के नाम से दिखाई पड़ती है, जिसमें सागर समुद्र आदि नाम दिए गए हैं। उक्त भारतीय कृषि विवेचना से स्पष्ट है कि मध्यकालीन भारत के दौरान भी भारत कृषि प्रधान देश था। लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारत पर्याप्त संसाधन और प्राकृतिक आपदा अकाल की स्थिति में भी आत्मनिर्भर की परिस्थितियां

उपमहाद्वीप में मौजूद थे। सामान्यतः किसानों के द्वारा अनाज की तुलना में वास्तविक लोगों की जरूरतों जिसमें खाद्यान्न के निर्यात की पर्याप्त गुंजाइश होती थी। उसमें कोई समकालीन संदर्भ नहीं है।

मध्यकालीन उत्पादन

खाद्यान्न फसलों के अलावा भारतीय उपमहाद्वीप में जड़ी बूटी मसाले सुगंधित लकड़ी की खेती जिसका एक अच्छा विदेशी बाजार था। उस समय प्रमुख फसलें तिलहन, दलहन, गेहूं, जौ, बाजरा, मटर, चावल, गन्ना और कपास आदि की उपलब्धता कराई जाती थी। अधिशेष अनाज भंडार या स्टॉक करने की प्रथा भी भारतीय उपमहाद्वीप में प्रचलन थी। जिसमें आमतौर पर अनाज गड्ढों या गड्डे में संग्रहित कर कर एक लंबे समय तक संरक्षित कर दिया जाता था। जिसमें विभिन्न प्रकार की कई किसानों की किस्म की फसल उत्पादन किया जाती थी।

दिल्ली के सुल्तान और अन्य शासकों के द्वारा भारतीय फसल की गुणवत्ता को सुधारने के लिए अनेक कार्य किए, जिसमें बागवानी पर विशेष ध्यान दिया गया। जिसमें परोक्ष रूप से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से फसलों की गुणवत्ता में सुधार हुआ। फिरोज शाह तुगलक के द्वारा दिल्ली के आसपास के क्षेत्रों में 1200 उद्यानों का निर्माण कराया गया, जिसमें सलोरा तटबंध पर 80 और चित्तौड़ में 74 बागो का लगाने का श्रेय दिया गया। उस समय सबसे लोकप्रिय फसल आम थी, हालांकि तरबूज भी काफी लोकप्रिय था एवं मध्यकालीन दौर में अंगूर, खजूर, अनार, आड़ू, संतरा से अंगूर फल, अंजीर, नींबू आदि की पर्याप्त मात्रा में भारतीय उपमहाद्वीप की किसान पैदा करते थे। साथ ही तटीय क्षेत्रों में नारियल की उपलब्धता बहुत अच्छी थी।

भारतीय ग्रामीण अर्थ संरचना-

भारतीय उपमहाद्वीप में सभ्यता का विकास आर्थिक आत्मनिर्भरता के तौर पर प्राच्य सभ्यता विकास से ही मौजूद था, हालांकि समय परिवर्तन के साथ मनुष्य में मनुष्य ने जीवन के विकास को सरल व सुगम बनाने के लिए अनेक योजनागत विकास की संकल्पना की। साथ ही ग्रामीण संरचना का विकास कर्म आधारित निश्चित करते हुए सामूहिक जिम्मेदारी और जवाबदेही के साथ-साथ जरूरतों को पूरा करने के लिए एक सामाजिक संविदा संहिता तैयार की। जिसे अनेक इतिहासकारों ने वर्ण व्यवस्था का नाम भी दिया है। इसमें पुरोहितों, क्षत्रिय, वैश्य और कामगारों की संख्या का उल्लेख दिया गया है। तत्कालीन परिस्थितियों में भारत में अनेक स्थनीय औद्योगिक बदलाव हुए, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था का स्वरूप स्थानीय हथियारों की उपज, चीनी के बर्तन, तेल आदि का निर्माण करने में बुनकर, चमड़ा श्रमिक, लकड़ी श्रमिक आदि की उपस्थिति प्रमाणित है। आमतौर पर स्थानीय ग्रामीण संरचना में छोटी ग्रामीणों आर्थिक संरचना होती थी। जिसमें स्थानीय जरूरतों को पूरा करना और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के मांग और आपूर्ति को पूरा करने के लिए एक चक्र स्थापित हुआ। इसमें धातु की उपलब्धता एवं कृषि की गुणवत्ता के साथ-साथ भारतीय क्षेत्रों में हथियारों की मांग और सामान्य उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का निर्माण प्रमुखता था। महाकाव्य कालखंड के बाद इन आर्थिक क्षेत्रों पर सामंती व्यवस्थाओं का उदय हो गया था, जो राजा और प्रजा के बीच की एक भ्रष्ट कड़ी के रूप में कार्य कर रही थी। इसी सामंती व्यवस्था का लाभ और भारतीय सामाजिक व्यवस्था में पड़ी सामाजिक फूट के कारण मध्यकालीन व्यवस्था में तुर्की और मुगल शासन व्यवस्था का अधिपत्य

स्थापित हो गया। जिसने न केवल राज्य की भूमि के उत्पादन के हिस्से और उनके कर्तव्यों का निर्धारण निश्चित किया। साथ ही एक बड़े वर्ग को बेकारी, बेरोजगारी और जीवन की अधिकारी में अंधकारमय भविष्य में डाल दिया। जिसके संदर्भ में के एम अशरफ कहते हैं कि किसानों के जीवन के बहुत कम और बहुत अस्पष्ट संदर्भ हैं लेकिन यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि उनकी स्थिति बहुत दयनीय और अर्ध भुखमरी की स्थिति में थी।

मध्यकाल में वस्त्र व्यापार के माध्यम से व्यापारिक गतिविधियों-

भारत में विदेशी व्यापार की संस्कृति प्राचीन सभ्यता से ही मौजूद थी। क्योंकि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा सभ्यता के दौरान मिले अनेक शब्दों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारत एक लंबे समय तक फारस से व्यापार करता रहा है। जिसका प्रमाण मध्यकालीन कालखंड में भी प्रासंगिक परिवर्तन के साथ जारी रहा, जिसमें वस्त्रों के प्रति राजाओं की संरक्षण का ओर अधिक पैदा हुई और जिसके फलस्वरूप इन वस्त्र और कपड़ों का उत्पादन वह व्यापार में बढ़ोतरी हुई विशेष रुप से मुगल काल के दौरान मध्यकालीन भारत में भारत में वस्त्रों और कपड़ों के उपयोग की जाने वाली तकनीक रूपांकन और प्रौद्योगिकी में फारस के प्रभाव को देखा जा सकता है। साथ ही भारत की परंपरागत रूप से वस्त्रों की परिधान परिपाटी की सजावट और सामान के लिए दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के शासकों ने रहे और सामंतों को सम्मान के तौर पर अनेक लालच और इनाम दिए, जिसने समय परिवर्तन के साथ भारत में नई कारखाना और कार्यशालाओं का आगमन हुआ। जिसमें दो प्रकार के कारखाने और कारखाने कार्यशाला में उत्पन्न हुई। जिसमें प्रथम स्वतंत्र कारखाने जो कारीगरों के द्वारा उनकी निजी पूंजी से काफी छोटे स्तर पर चले गए, वही दूसरे शाही कारखाने, जिन्हें राजदरबार के द्वारा संरक्षित कर विशेष रूप से शाही घरानों की आवश्यकता पूर्ति के लिए निश्चित किया गया। शाहजहां और औरंगजेब के शासनकाल के दौरान फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने अपनी यात्रा ग्रंथ में लिखा है कि मुगल साम्राज्य में इन कार्यशालों में कई विशाल कक्षाओं के संयोजन का वर्णन कर विशिष्ट कार्यक्रमों की कुशलता का परिचय दिया है। इन विशाल कक्षा में किसी एक अधीक्षक के अंतर्गत कढ़ाई करने वाले चित्रकार, दर्जी, मलमल, बुनकर, जर्सी का काम करने वाले आदि कार्यक्रमों का उल्लेख किया गया है।

मध्यकाल खंड में सूती कपड़े का उल्लेख भी व्यापक रूप से उत्पादित और क्रमिक क्रय विक्रय के रूप में किया गया है। जिसमें दिल्ली, लाहौर, आगरा, पटना, बनारस, अहमदाबाद, बुरहानपुर और ढाका में सूती कपड़ों के उत्पादन स्थलों का उल्लेख किया गया है। इसके उपरांत मध्यकाल खंड में कपास के रेशे को दो प्रकार के तकनीकी रूप में विभक्त किए जाने की आदिम विधि को कपास से छड़ से पीटा जाता था। जिसमें भविष्य के टूटने की संभावनाएं अधिक होती थी। कपास को धोहने की विधि 11वीं शताब्दी में भारत में उपयोग में लाई गई, वहीं 13वीं और 14वीं शताब्दी में चरखा, इस्लामिक दुनिया के मध्य होते हुए भारत पहुंचा। तकली और चकरा दोनों ही एक साथ अस्तित्व में आए। 16वी शताब्दी में गड्ढा करधा का संदर्भ मिलता है। साथ ही प्रथम चित्र तूतीनामा या तोते की कहानियों से आता है। जिसमें किए गए लघु चित्रों को 16वीं शताब्दी के मध्य में मुगल साम्राज्य अकबर के द्वारा किया गया। अतः स्पष्ट है कपड़ा उद्योग मध्यकालीन कालखंड में एक औद्योगिक क्षेत्र के रूप में आर्थिक भागीदारी कर रहा था। साथ ही कपड़ा उद्योग का उपयोग सल्तांत, मुगल सम्राट एवम् तत्कालीन शासन काल के शासकों के परिवारों के लिए मलमल के कपड़े से लेकर अन्य कई प्रकार के कपड़ों का उपयोग किया जाता था, मलमल के उपयोग का अबुल फजल के द्वारा आईने अकबरी में सोनार गांव, बनारस, आगरा, मालवा, दक्कन, गुजरात, लाहौर, मुल्तान, बुरहानपुर, गोलकुंडा के मलमल शिल्प केंद्रों का जिक्र किया गया है। अतः मध्यकालीन कालखंड में कृषि आधारित वस्त्रों के उद्योग में अत्यधिक वृद्धि हुई और मुगलों के अधीन यह सबसे बड़ा उद्योग बना। जिसमें भारत के कपड़ों की खरीद पूरे विश्व भर में फैल गई, हालाकि शासन व्यवस्था व प्रशासन की धार्मिक संस्कृतियों ने भारतीय समाज को अनेक करो से लाध कर शोषण और उनके प्रति व्यवहार में कठोरता बनाई। किंतु यह औधोगिक संरचना अंग्रेजों के आगमन के बाद क्षय हुआ। क्योंकि अंग्रेज हाथ से बने हुए वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा को औद्योगिक क्रांति में विकसित हुई नई उद्योग संस्कृति के निर्मित उत्पाद के समक्ष पेश किया जिसमें वे टिक नहीं पाई। साथ ही भारतीय उतापदो पर भारी कर लगाया गया।

मध्यकाल का आर्थिक कर व्यवस्था-

कृषकवर्ग

भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि एक लंबे समय तक राजस्व प्राप्ति का सावधान रही है। जिसमें पशुपालन एवं फसलों के उत्पादन से प्राप्त आर्थिक संरचना शामिल की जाती रही। इसी के आधार पर भारतीय कृषक समुदाय की प्रासंगिकता औद्योगिक क्रांति तक बनी रही। मध्यकालीन भारत में कृषक वर्ग

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.04, No.06, June,2025

को दो निम्नलिखित विभिन्न भागों में विभाजित किया गया है, जिसमें बापीदार- कृषक समुदाय यह क्षेत्र उत्तर भारत में सबसे समृद्ध कृषि क्षेत्रों में से एक है। खालसा क्षेत्र में जिन किसानों को स्थाई तौर पर भूमि की उपलब्धता कराई गई थी। उन्हें माफीदार या विस्वादार नाम दिया गया। इसके अंतर्गत किसानों को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थाई भू स्वामित्व के अधिकार प्राप्त है। इन कृषक समुदायों को मोर्हर्म मोहर छाप लिखित पट्टा प्राप्त तत्कालीन शासन व्यवस्था के द्वारा उपलब्ध कराया गया था। जिसमें काश्तकार के पट्टे में लिखित रूप से यह निश्चित किया गया था।

यह भूभाग वंशानुगत निजी अधिकारों का उपयोग निश्चित होगा, परंतु राज्य की नीति और नियमों से पबंध रहेगा, इन किसानों को राज्य की ओर से अधिक रियायतें दी गई। जैसे उनके खेत के आसपास पैदा होने वाले पेड़ पौधों पर उनका स्वत ही स्वामित्व निर्धारित कर दिया जाता था और सिंचाई के लिए खोदे हुए कुए का उपयोग कर बापीदार अपनी उपज को बढ़ा सकते हैं, किंतु कर निर्धारण के समय उक्त सेवाओं को ध्यान रखा जाता था। भूमि का स्वामित्व कृषक समुदायों को निश्चित किया गया था, जो भूमि उनको बपौती में मिली थी, जिसे दाखला कहते हैं।

रैयत-

राजपूतानी क्षेत्रों में रैयतवाड़ी प्रणाली ब्रिटिश भारत की रयत प्रणाली से विनती इस प्रणाली के अंतर्गत किसानों को वर्ष के आरंभ में तत्कालीन शासन व्यवस्था के द्वारा पट्टे के रूप में वैधता प्रदान की जाती थी, किंतु इन किसानों को जोत का स्थाई अधिकार प्राप्त नहीं थे एवं इन किसानों को वैधता का समय भू स्वामित्व फसल वर्ष की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता था। पुनःआवंटन, नई फसल वर्ष में अवैध किसानों को नए पत्तों की उपलब्धता करा कर किसानों को पुनःवैधता दी जाती थी किंतु यह सुनिश्चित नहीं होता था कि किसान को वही भूमि आवंटित नए फसल वर्ष में मिलेगी जो उसके पास पिछले वर्ष निर्धारित की गई थी। इस प्रकार कृषक वर्ग को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होता था और कृषक और राजस्व के संबंध में संपूर्ण अधिकार शासन व्यवस्था या सुल्तान के पास निश्चित था। इसे रैयतवाड़ी व्यवस्था कहा गया।

बेगारप्रथ-

नानकर का तात्पर्य मूल रूप से भोजन की उपलब्धता से था। जिसमें निर्धारित किया गया था कि रोटी के लिए कार्य करना। इस स्थिति में लोगों की सामाजिक जागीर क्षेत्र जैसी थी, इनसे ने कोई लगान लिया जाता था, ना ही किसी प्रकार की सेवा इनसे ली जाती थी, इनसे मात्र उत्तराधिकारी शुल्क लिया जाता था। किसी व्यक्ति से बिना किसी सहमति एवं मजदूरी के काम कराने को ही बेगार माना गया। राजा जमीदार एवं उनके कर्मचारी प्रजा से बेकार होने में अपना हक समझते थे। बेकार में भी कई प्रकार की व्यवस्था निर्धारित की गई। जिसमें ब्राह्मणों एवं राजपूतों को छोड़कर सभी जातियों को बेगार देने के लिए विवश किया गया, जागीर क्षेत्र में लगान बाघों का स्वरूप बड़ा ही आलोचनात्मक था। जिसमें निम्न जाति के किसानों से भू राजस्व एवं लाभ बागे की अधिक मात्रा वसूली जाती थी, यह वर्ग सामाजिक, आर्थिक दोनों के रूप में शोषण को प्रतिपादित करती है।

पाही काश्त-

जिन किसानों के पास अपनी गांव में कृषि भूमि नहीं थी, वह अन्य गांव में भूमि प्राप्त करते थे। ऐसे ही किसानों को पाही काश्तकार कहा गया, अर्थात किसी दूसरी ग्राम पंचायत या गांव में जाकर खेती करने वाले किसानों को पाही कहा जाता था।

गैर भागीदार किसान

गैर भागीदार किसान यह कृषक समुदाय भूमि पर किसी प्रकार के अधिकार को प्राप्त नहीं करते थे, वह सिर्फ मात्र नाम मात्र के कृषक समुदाय थे जो दूसरे काश्तकारों के खेत में जाकर कृषि कार्य किया करते थे अपनी भूमि को गिरवी रखने का अधिकार उनके पास नहीं थे। अर्थात यह कृषक समुदाय उस समय की आर्थिक संरचना का शोषित स्वरूप था।

रियायती

गांव के ऐसे मूल कृषक समुदाय जिनके पास विशेषाधिकार प्राप्त है, रियायती कहलाते थे।

गेवती-गांव में स्थाई स्वरूप में रहने वाले कृषक समुदायों को गेवाती कहा जाता था।

खालसा क्षेत्र-खालसा उन क्षेत्रों को कहा जाता था, जहां पर स्थाई भू स्वामित्व दिए गए थे।

घरी-घरों पर लगने वाला कर था। इसकी शुरुआत अलाउद्दीन खिलजी ने की थी।

चारा-चरह पशुओं के चरने के लिए प्रयुक्त घास के मैदानों पर लगाया जाने वाला कर था। इसे अलाउद्दीन खिलजी ने भी पेश किया था।

खिराज-खिराज गैर-मुसलमानों की भूमि के सकल उत्पाद पर लगाया जाने वाला कर था। इसे फिरोज शाह तुगलक ने पेश किया था।

उशरफ-उशरफ मुसलमानों से संबंधित भूमि के सकल उत्पाद पर लगाया जाने वाला कर था।

जकात/सदका-ज़कात मुसलमानों पर लगाया जाने वाला एक धार्मिक कर था। इसे कबीर-ए-मुल्क की अध्यक्षता वाले दीवान-ए-रसालत के विशेष खजाने में रखा गया था

जजिया-जजिया गैर-मुस्लिमों और इस्लाम के गैर-अनुयायियों पर लगाया जाने वाला कर था।

ख़ुम्स-यह एक सेना द्वारा अपने प्रतिद्वंद्वी से एकत्रित युद्ध लूट से संबंधित है। उदाहरण के लिए - यदि किसी सेना को विरोधी से 100 रुपये मिलते हैं, तो वह 80 रुपये अपने पास रख लेती है और बाकी राजकोष में दान कर देती है।

शरब या शरब-शरब या शरब जल आपूर्ति सुविधाओं को विकसित करने और बनाए रखने के लिए किसानों पर लगाए गए फसल उत्पादन का 1/10 हिस्सा था। इसे फिरोज तुगलक ने पेश किया था।

विजयनगर साम्राज्य

विजयनगर साम्राज्य में, भू-राजस्व एकत्र करने वाले सरकारी विभाग को अथानवे कहा जाता था। विजयनगर के सम्राट भूमिकी उर्वरता के आधार पर कर वसूल करते थे। उत्पादन पर कर सकल उत्पाद का 1/6 था। इसका भुगतान या तो फसल या धन के रूप में किया जाता था। वेश्यावृत्ति पर भारी कर लगाया गया।तुर्क सुल्तानों ने अपनी मौद्रिक नीति के रूप में इस्लामिक न्यायशास्त्र के हनफ़ी स्कूल का अनुसरण किया। इब्राहिम लोधी के समय लागत बहुत कम थी। विजयनगर साम्राज्य में वस्तुओं की कीमत भी कम थी।

जरीब-जरीब का परिचय मुर्शिद कुली खान ने इकाई बीघा के आधार पर दिया था। यह फसल उत्पादन के एक चैथाई के रूप में एकत्र किया गया था। यह किसी भी रूप में भुगतान किया गया था

चैथ सरदेशमुखी

शिवाजी ने इन करों को अपने क्षेत्र के बाहर एकत्र किया। चैथ सरदेशमुखी मुगल अधिकारियों द्वारा भुगतान किए गए सरकारी राजस्व का 1/4 था। इसके अतिरिक्त सरदेशमुखी पर एक और दस प्रतिशत कर था।

शोध समस्या का आलोचनात्मक प्रस्तुतीकरण

मध्यकाल की सल्तनत और मुगल शासन व्यवस्था के दौरान आर्थिक जीवन की संक्षिप्त विवेचना सल्तनत काल में नगरों की आबादी मिलीजुली थी। इसमें अनेक कम स्थिति वाले अमीर बड़ी संख्या में सरकारी कार्यालय में एक कलर्क के तौर पर कार्य करते थे। बड़ी संख्या में दुकानदार, दस्तकार, अधिकारी आदि नगर की आबादी में शामिल थे। तत्कालीन परिस्थितियों में बाबू और निचले सरकारी हाकिम के पद पर उन लोगों को निर्धारित किया जाता था, जो तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार पढ़े लिखे थे। अध्यापन कार्य अधिकतर मुस्लिम धार्मिक, गुरुओं के द्वारा किया जाता था। नगरों में एक और बड़ा समूह दास और घरेलू नौकरों का था। जिससे स्पष्ट होता है कि सल्तनत मुगल काल व्यवस्था के दौरान भारत में पश्चिम एशिया और यूरोप से लंबी समय अवधि से दास प्रथा का प्रचलन चला रहा था, इन दासों को नगर में खाद्य पदार्थों की उपलब्धता एवं दैनिक कार्यों में लगाया जाता था। सल्तनत काल में नगर वासियों के लिए खाद उपलब्धता की सरलता थी। उस दौरान एक मन गेहूं 7.30 जीतल का मिलता था, जो का रेट 4 और चावल 5 जीतल के रूप में तथा जीतल के 48 सिक्के चांदी के 1 टके के बराबर होते थे। सल्तनत काल में अलाउद्दीन खिलजी के द्वारा अर्थव्यवस्था को व्यवस्थित ढंग से निर्धारित किया। जिसमें कृषि की प्रसार प्रचार की व्यवस्था को सुनिश्चित किया गया, साथ ही कारीगर और श्रमिकों को जीवन यापन के लिए एक निम्न खर्च की सीमा रेखा निश्चित की गई। जिसमें 1 कारीगर की मजदूरी दो या तीन जीतल प्रतिदिन होती थी। अकबर के शासन काल में कुशल श्रमिकों की तनख्वाह ढाई से 3 जीतल प्रति माह के रूप में दी जाती थी। आय की दृष्टि से नगरों के कारीगर और श्रमिकों के जीवन की दशा कठोर होने लगी। जिससे स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन समाज में भारी असमानता का दौर था। जिसने न केवल भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को तोड़ा बल्कि अत्याचार के माध्यम से हिंदू संस्कृति और सभ्यता को कुचलने का प्रयास किया गया। हालांकि यह अलग विषय है कि आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर मुस्लिम समाज में असमानता अधिक दिखाई पड़ती है और इस कालखंड में अधिकतर हिंदू ग्रामीण क्षेत्र में थे। जिनके बीच असमानता निम्न स्तर पर थी, नगरों में मुस्लिम अमीर भारी-भरकम जीवन शैली और शौक नवाबी के तौर पर जीवन जीते थे। कुछ धनी सौदागर भी हिंदू और मुसलमान दोनों में शामिल थे। हालांकि दोनों ही धर्मों की देहाती जीवन सीधा, सादा और सरल था। जिसमें कठिनाइयां और चुनौतियां कम थी।

निष्कर्ष

मध्यकालीन भारत के इतिहास में मुस्लिम शासकों के द्वारा न केवल भारत की प्राचीन दृष्टिकोण के आधार पर विकसित हुई ग्रामीण अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न किया बल्कि अपनी विदेशी संस्कृति, आक्रमण व लूट की पद्धति से भारतीय जनसमुदाय की संपत्ति को लूटा गया। जिसे बाद में शासन व्यवस्था स्थापित होने के बाद संस्थागत रूप से लूटा गया। इसमें स्त्रियों को अलग रखने और स्त्रियों को प्रतिबंधित प्रथा पर्दा प्रथा में रहने की भारतीय समाज में व्यवस्था पैदा की गई। जिससे भारत की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी कमजोर होती चली गई। महिलाओं के द्वारा संपत्ति का संरक्षण नहीं किए जाने पर समाज में लूट की पद्धति के अत्याचारों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मांग और आपूर्ति की श्रंखला छिन्न-भिन्न कर दी गई। साथ ही इस कालखंड में भारत की वर्ग वर्ण व्यवस्था का लाभ उठाते हुए भारतीय समाज के भीतर शूद्रों को मुस्लिम शासकों के द्वारा भड़का कर धर्म परिवर्तन के साथ साथ भारतीय समाज की चली आ रही रीति-रिवाजों से भी मुक्त कर दिया गया। जिससे पूरी अर्थव्यवस्था चरमरा गई।

वहीं 17वी शताब्दी के अंतिम तक मुगल साम्राज्य ने अपने क्षेत्र प्रसार को संपूर्ण भारत में आर्थिक दमन की नीतियों के आधार पर फैला दिया गया। जिसमें अकबर के उदारवादी दृष्टिकोण को छोड़कर सभी मुस्लिम शासकों ने केंद्रीकृत सत्ता को ध्यान में रखकर विकास की संभावनाएं व्यक्त की, जिससे भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था टूटती चली गई। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में संगरण और आपदा परिस्थितियों में संगठित संस्थागत अनाज की उपलब्धता खत्म होती चली गई। जिसके कारण न केवल ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था संकट पूर्ण परिस्थितियों में तत्कालीन परिस्थिति के शासकों पर निर्भर हो गई बल्कि हिंसात्मक प्रवृत्ति से समाज में विसंगतियां पैदा हो गई लूट, चोरी, डकैती का प्रचलन पैदा हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का इतिहास डाॅ. रामगोपाल शर्मा, समता साहित्य प्रकाशन, जयपुर।

आदित्य राज पांडे (2012), दो मुगल शासकों के अधीन राजत्वः बाबर और शाहजहाँ।

झिंगन, डा.एम.एल., (2000), विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स, त्रयोदश संशोधित एवं परिवर्दित संस्करण।

धीगरा ईश्वर (1991),''ग्रामीण अर्थव्यवस्था'', सुल्तान चन्द्र एण्ड सन्स, नई दिल्ली।

अहमद, एफ.एफ. (2020)। मुगलों के तहत कूटनीति के अभ्यास,1526-1707, एफडब्ल्यूयू जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज, 14(2),95-107।

सहायक, एम.के. (2020), मुगलों द्वारा भारत में फारसी भाषा और साहित्य को बढ़ावा देने के सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक पहलू, 64-76। चन्द्र, विपिन, आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद व उपनिवेशवाद।

नीलकांत, जाति, परंपरा और इतिहास, हाथ प्रकाशन, कर्नलगंज, इलाहाबाद, 1999

अग्रवाल, जी.के., एस.एस. पाण्डेय, (1999), ''ग्रामीण समाजशास्त्र'', साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड हिस्ट्री स्कूटर्स प्रा.लि. आगरा।.

*Corresponding Author: Sadhana Kushwaha
E-mail: sadhnakushwaha9868@gmail.com
Received: 08 May,2025; Accepted: 24 June,2025. Available online: 30 June, 2025
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License